National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2026; 1(64): 136-141
© 2026 NJHSR
www.sanskritarticle.com

**ज्योतिका बशिष्ठ**
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
गौहाटी विश्वविद्यालय, असम

**Correspondence:**
**ज्योतिका बशिष्ठ**
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
गौहाटी विश्वविद्यालय, असम

# पूर्वोत्तर के जनजातीय वाद्ययंत्र : एक परिचयात्मक अध्ययन

**ज्योतिका बशिष्ठ**

## शोध-सार

भारत के उत्तर-पूर्वी छोर पर स्थित असम, अरुणाचल, नागालैंड, मणिपुर, मिजोरम, मेघालय, त्रिपुरा, और सिक्किम नामक आठ राज्यों के समूह को साधारणतः पूर्वोत्तर भारत कहा जाता है। यह क्षेत्र सैकड़ों जनजातियों का निवास स्थल है, जो अपनी अनूठी भाषा, संस्कृति एवं परंपराओं के माध्यम से भारतीय सांस्कृतिक वैविध्य को समृद्ध बनाती हैं। इन जनजातियों के सांस्कृतिक जीवन में पारंपरिक वाद्ययंत्रों की भी महत्तपूर्ण भूमिका रही है। इन वाद्ययंत्रों को उनके धार्मिक-सांस्कृतिक अनुष्ठानों का अभिन्न अंग माना जा सकता है। पूर्वोत्तर भारत के विभिन्न जनजातीय उत्सव-अनुष्ठानों में वादन किए जाने वाले इन वाद्ययंत्रों का उल्लेख वहाँ की जनजातीय भाषाओं से हिन्दी में अनूदित कहानियों में भी विविध प्रसंगों में मिलता है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य इन कहानियों में वर्णित जनजातीय वाद्ययंत्रों का परिचयात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करना है। अध्ययन में वाद्ययंत्रों व जनजातीय वाद्ययंत्रों की संकल्पना तथा प्रयोग आदि पर विचार करते हुए आचार्य भरतमुनि द्वारा प्रतिपादित वाद्ययंत्रों के चतुर्विध वर्गीकरण के आधार पर पूर्वोत्तर के वाद्ययंत्रों का वर्गीकरण तथा उनके निर्माण-प्रणाली, वादन-प्रणाली, सांस्कृतिक प्रयोग के क्षेत्र आदि का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है।

अध्ययन की सुविधा हेतु इस आलेख के मुख्य विषयवस्तु को वाद्ययंत्रों का इतिवृत्त, वाद्ययंत्र और संगीत का संबंध, वाद्ययंत्रों के प्रयोग के क्षेत्र, वाद्ययंत्र की परिभाषा, जनजातीय वाद्ययंत्र से तात्पर्य, पूर्वोत्तर में जनजातीय वाद्ययंत्रों की मौजूदगी, वाद्ययंत्रों का वर्गीकरण, आलोच्य कहानियों में प्रस्तुत पूर्वोत्तर के जनजातीय वाद्ययंत्र, इन बिंदुओं में विभाजित कर विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

**बीजशब्द :** वाद्य, संगीत, संस्कृति, बड़ो, तिवा, लेपचा, डिमाचा, तत्, अवनद्ध, घन, सुषिर।

## प्रस्तावना

भारत एक बहु-जातीय व बहु-सांस्कृतिक देश है। इसके प्रत्येक राज्य की अपनी विविष्ट और समृद्ध सांस्कृतिक परंपरा रही है, और पूर्वोत्तर के आठों राज्य इसका जीवंत उदाहरण पेश करते हैं। इस क्षेत्र में निवास करने वाले प्रत्येक जातीय वा जनजातीय समुदायों ने अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक परंपराओं को आज भी जीवित रखा है। यह सराहनीय है कि हाल के समय में यहाँ के कई जनजातीय समुदायों की समृद्ध संस्कृति को स्थानीय साहित्य में पर्याप्त स्थान प्राप्त हुआ है। साथ ही, ऐसे साहित्य का हिन्दी में अनुवाद भी होने लगा है, जिसके परिणामस्वरूप पूर्वोत्तर की विभिन्न जनजातीय संस्कृति एक व्यापक पाठक वर्ग तक पहुँच सकी है। प्रस्तुत शोध पत्र में इन्हीं जनजातीय भाषाओं से हिन्दी में अनूदित कहानियों को आधार बनाया गया है। इन कहानियों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि इनमें पूर्वोत्तर के विभिन्न जनजातीय वाद्ययंत्रों का भी उल्लेख विभिन्न प्रसंगों में हुआ है। अतः इस शोध पत्र का उद्देश्य पाठकों के समक्ष इन वाद्ययंत्रों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करना है।

उल्लेखयोग्य है कि प्रस्तुत शोध में वाद्ययंत्रों व जनजातियों के नाम आधार-ग्रंथों के आनुसार ही ग्रहण किए गए है, जहाँ उनका असमीया से हिन्दी लिप्यंतरण किया गया है। मूल असमीया शब्दों के हिन्दी लिप्यंतरण से कुछ स्थानों पर उच्चारण संबंधी भिन्नताएँ दृष्टिगोचर होती है। आवश्यकतानुसार उच्चारण संबंधी स्पष्टीकरण को कोष्ठक में प्रस्तुत किया गया है।

**वाद्ययंत्रों का इतिवृत्त**

संसार में वाद्ययंत्रों की परंपरा मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ चली आ रही है। यह कहा जा सकता है कि जैसे ही मनुष्य ने ध्वनि को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया, उसी क्षण वाद्ययंत्रों का भी बीज पड़ गया। संसार की प्रत्येक सभ्यता और संस्कृति में वाद्ययंत्रों की एक समृद्ध परंपरा देखने को मिलती है, यद्यपि उसके उद्भव और विकास का सटीक ऐतिहासिक विवरण दे पाना कठिन है।

भारत में वाद्ययंत्रों का अस्तित्व अत्यंत प्राचीन काल से रहा है। इसके प्रमाण ऋग्वेद, रामायण, महाभारत जैसे वैदिक एवं पौराणिक ग्रंथों में स्पष्ट रूप से उपलब्ध हैं, जहाँ विभिन्न वाद्ययंत्रों का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त, मंदिरों, गुफाओं व पुरातात्विक स्थलों में प्राप्त मूर्तियों, भित्ति-चित्रों, एवं शिलाकृतियों में भी विभिन्न वाद्ययंत्रों की उपस्थिति देखी जा सकती है।

भारतीय संस्कृति में वाद्ययंत्रों की पौराणिक महत्ता का एक महत्वपूर्ण प्रमाण विभिन्न हिन्दू देवी-देवताओं के साथ उनका प्रतीकात्मक संबंध है। भगवान श्रीकृष्ण की मुरली, देवी सरस्वती की वीणा, तथा भगवान शिव का डमरू इस तथ्य को रेखांकित करते हैं कि भारतीय सभ्यता में वाद्ययंत्र सदियों से आध्यात्मिक और सांस्कृतिक चेतन के वाहक रहे हैं।

**वाद्ययंत्र और संगीत का संबंध**

वाद्ययंत्रों का संगीत से घनिष्ठ और अविच्छिन्न संबंध रहा है। अतः वाद्ययंत्रों की चर्चा से पूर्व संगीत की संकल्पना को समझना आवश्यक है। भारतीय संगीतशास्त्र में अनेक ऋषियों और विद्वानों ने संगीत की परिभाषा प्रस्तुत की है, किन्तु शारंगदेव द्वारा उनके कालजयी ग्रंथ 'संगीत-रत्नाकर' में दिया गया सूत्र सर्वाधिक मान्य और प्रचलित है, जो इस प्रकार है - 'ष्गीतं वाद्यं तथा नृत्यं एयं संगीत्मुच्यतेष्।'[1] अर्थात गीत, वाद्य, और नृत्य- इन तीनों के संयोजन को संगीत कहा जाता है। इस परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि संगीत की पूर्णता के लिए वाद्ययंत्रों की भूमिका अनिवार्य है। वाद्ययंत्रों के बिना न तो कोई भी गीत प्रभावी हो सकता है, और न ही नृत्य में जीवंतता आ सकती है। वस्तुतः वाद्ययंत्र संगीत को भाव, गति और विस्तार प्रदान करते हें।

**वाद्ययंत्रों के प्रयोग के क्षेत्र**

विद्वानों का यह मत है कि प्रारम्भिक काल में वाद्ययंत्रों का उपयोग केवल संगीत के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं था। शंख, ढोल और नगाड़े जैसे वाद्ययंत्रों का प्रयोग संगीतात्मक और गैर-संगीतात्मक दोनों उद्देश्यों के लिए किया जाता था। राजकीय घोषणाओं के समय ढोल बजकर जनता को सूचित किया जाता था। युद्ध की शुरुआत और विजय का संकेत शंख बजाकर दिया जाता था। इसके अलावा, धार्मिक अनुष्ठानों और मंगल अवसरों पर भी शंख की ध्वनि का उपयोग किया जाता था। अभिषेक समारोह में शंख का जल आवश्यक होता था। युद्धकाल में सैनिकों का उत्साह बढ़ाने तथा संकेत देने के लिए भी वाद्ययंत्रों का उपयोग होता था।[2] वाद्ययंत्रों से सम्बंधित ये परंपराएँ वर्तमान समय में भी अनेक क्षेत्रों में किसी न किसी रूप में जीवित हैं।

इस प्रकार, संगीत के संदर्भों के अलावा, वाद्ययंत्रों का प्रयोग विभिन्न सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, और राजकीय जीवन के विभिन्न पक्षों से जुड़ा रहा है। अतः कहा जा सकता है कि वाद्ययंत्रों का स्वरूप और उपयोग बहुआयामी रहा है। प्रस्तुत लेख में पूर्वोत्तर के जनजातीय वाद्ययंत्रों के विविध प्रयोगों पर भी यथासंभव प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

**वाद्ययंत्र की परिभाषा**

'वाद्य' शब्द संस्कृत के 'वद्' धातु से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'बजाने योग्य'। इस प्रकार वाद्ययंत्र का अर्थ होता है 'ऐसा यंत्र जिसे बजाया जा सके, या जो बजाने योग्य हो'। वाद्ययंत्रों को परिभाषित करते हुए डॉ. नबीन चंद्र शर्मा ने कहा है - 'संगीत के संदर्भ में, ध्वनि उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त कोई भी उपकरण वाद्ययंत्र कहलाता है।'[3] इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि संगीतात्मक ध्वनि उत्पन्न वाले सभी साधन वाद्ययंत्र की श्रेणी में आते हैं।

**जनजातीय वाद्ययंत्र से तात्पर्य**

जिस प्रकार भारतीय संगीत के शास्त्रीय, लोक और जनजातीय नामक तीन भेद किए जाते है, उसी प्रकार नृतात्विक दृष्टि से वाद्ययंत्रों को भी कुछ भागों में विभाजित किया जा सकता है। डॉ. शर्मा ने अपने ग्रंथ 'भारतर उत्तरपूर्वाञ्चलर लोक संस्कृति' में वाद्ययंत्रों को अभिजात या शास्त्रीय वाद्ययंत्र, लोक वाद्ययंत्र और जनजातीय वाद्ययंत्र नाम से तीन श्रेणियों में विभाजित करते हुए 'जनजातीय वाद्ययंत्रों' को इस प्रकार परिभाषित किया हैं 'अपनी अलग अर्थव्यवस्था, भाषा-संस्कृति के साथ किसी विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र में निवास करने वाले नृजातीय समूह विशेष को आदिवासी या जनजाति कहा जाता है। इन आदिवासी समुदायों द्वारा अपने गीतों और नृत्यों के साथ जिन वाद्ययंत्रों का व्यवहार किया जाता है, वे वाद्ययंत्र जनजातीय वाद्ययंत्र कहलाते हैं'[4]

**पूर्वोत्तर में जनजातीय वाद्ययंत्रों की मौजूदगी**

भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र में जनजातीय वाद्ययंत्रों की एक अत्यंत समृद्ध परंपरा देखने को मिलती है। यह क्षेत्र मूलतः जनजाति बहुल क्षेत्र है, जहाँ बड़ो, मिचिङ, लेपचा, तिवा, डिमाचा, कार्बि, मिजो, आदी, खासी, इत्यादि जैसे सैकड़ों जनजातीय समुदाय निवास करते

हैं। पूर्वोत्तर भारत के आठों राज्यों में निवास करने वाले प्रत्येक जनजातीय समुदाय की अपनी विशिष्ट संस्कृति है, जिसका एक मुख्य घटक उनके पारंपरिक वाद्ययंत्र हैं। इन जनजातियों में प्राचीन काल से ही कई प्रकार के संगीत वाद्ययंत्रों का प्रयोग होता आ रहा है। इन जनजातियों के प्रत्येक श्रेणियों के लोग जैसे पुरुष, महिला, युवा, वृद्ध, सभी विभिन्न पर्व-त्योहारों, पूजा-पाठ, विवाह संस्कारों, कृषि कार्यों तथा अन्य सामाजिक अवसरों पर अनेक प्रकार के गीत गाते हैं, और साथ ही नृत्य के माध्यम से उन गीतों के भावों को दर्शाते हैं। इन गीतों और नृत्यों को जीवंत बनाने के लिए वे विभिन्न जनजातीय वाद्ययंत्रों का भी प्रयोग करते हैं।

**वाद्ययंत्रों का वर्गीकरण**

आदिकाल से वर्तमान समय तक मानव समाज में विभिन्न प्रकार के वाद्ययंत्रों का उपयोग होता रहा है, जिनको वर्गीकृत करने का सर्वप्रथम प्रयास आचार्य भरतमुनि ने किया है। आचार्य भरतमुनि अपने ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' में वादन क्रिया के आधार पर वाद्ययंत्रों का वर्गीकरण प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं -

**"ततं चौवावनद्धं च घनं सुषिरमेव च**

**चतुर्विध तु विज्ञेयमातोद्यं लक्षणान्वितम्।।"**[5]

अर्थात् वाद्ययंत्र चार प्रकार के होते हैं - तत्, अवनद्ध, घन, और सुषिर। इन चारों प्रकार के वाद्ययंत्रों के लक्षण स्पष्ट करते हुए वे आगे लिखते हैं -

**"ततं तन्त्रीगतम् ज्ञेयमवनद्धं तु पौष्करम्।**

**घनं तालस्तु विज्ञेयः सुषिरो वंश उच्यते।।"**[6]

अर्थात् तत् वाद्य तंत्रीयुक्त वाद्य हैं, अवनद्ध वाद्य पुष्कर वाद्य हैं, घन वाद्य ताल वाद्य हैं, एवं सुषिर वाद्य वंशी वाद्य हैं।

**आलोच्य कहानियों में प्रस्तुत पूर्वोत्तर के जनजातीय वाद्ययंत्र**

संगीत वाद्ययंत्रों के उपरोक्त चारों प्रकार, अर्थात तत्, अवनद्ध, घन, और सुषिर वाद्ययंत्र पूर्वोत्तर भारत के प्रत्येक जनजातीय समुदायों में पारंपरिक रूप से प्रयुक्त होती है, जिनकी उपस्थिति प्रस्तुत शोध की आधारभूत कहानियों में भी प्रचुर मात्रा में देखी जा सकती है।

आगे इन चार भेदों की व्याख्या और कहानियों में उल्लिखित संबंधित वाद्ययंत्रों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है।

**1. तत् वाद्ययंत्र**

तत् या तंत्रीयुक्त वाद्य वे वाद्ययंत्र होते हैं जिनमें तार या तंत्री के कंपन से ध्वनि या स्वर उत्पन्न किए जाते है। इन तारों पर कंपन उत्पन्न करने के लिए आघात अथवा घर्षण की क्रिया अपनाई जाती है। तत् वाद्ययंत्र की श्रेणी में वे सभी वाद्य आते हैं जिन्हें उंगली, गज, मिजराब, या जवा आदि की सहायता से बजाया जाता है। इन वाद्यों में तारों की संख्या, आकार, तथा निर्माण सामग्री के अनुसार ध्वनि की प्रकृति में विविधता पाई जाती है। कुछ प्रचलित भारतीय तत् वाद्ययंत्रों में वीणा, सितार, संतूर आदि का नाम लिया जा सकता है। आलोच्य कहानियों में पूर्वोत्तर भारत के दो प्रमुख जनजातीय समुदाय बड़ो और लेपचा समुदाय के पारंपरिक तत् वाद्ययंत्रों का उल्लेख मिलता है। इनपर आगे बिन्दुवार चर्चा की जा रही है।

**क) सेरजा**

सेरजा असम एवं पूर्वोत्तर के सर्ववृहद जनजातीय समुदाय, बड़ो समुदाय का एक पारंपरिक तत् वाद्ययंत्र है, जिसे भारत सरकार द्वारा भौगोलिक संकेतक चिह्न भी प्राप्त है। सेरजा आमतौर पर कटहल, चितवन, या सेहुंड (सीज), जिसे स्थानीय भाषा में 'सिजु' कहा जाता है, के पेड़ की लकड़ी से तयार किया जाता है। इसका ढांचा लकड़ी के एक ही टुकड़े को बारीकी से तराशकर बनाया जाता है। वाद्य के मुख्य शरीर के लिए लकड़ी के टुकड़े के आधे हिस्से में एक खोल तराशा जाता है, जो अंदर से खोखला होता है। इस खोल का मध्य भाग बहुत संकरा होता है, जो इसे दो भागों में बांटता प्रतीत होता है। खोल का निचला भाग छोटा और नाशपाती के आकार का होता है, जिस पर गोह या बकरी की चमड़ी मढ़ी होती है, और खोल का ऊपरी भाग खुला और बड़े आकार का होता है, जिस पर कोई आवरण नहीं होता।[7] खोल के ऊपरी सिरे पर लकड़ी के टुकड़े को थोड़ा लंबा और संकरा रखा जाता है, जिसके अंत में एक छोटा खोल फिर से बनाया जाता है और उसमें खूँटे लगे होते है। इन खूटों पर खोल के बिल्कुल निचले सिरे से तारों को कसा जाता है।[8] सेरजा में तीन या चार तार होते हैं जो मुगा रेशम या ऊदल पेड़ की छाल से बने होते हैं। इसके सहायक उपकरणों में हैं चार पुथी या खूँटियाँ, एक घोड़ा या ब्रिज, एक गज (धनुषाकार बांस की छड़ी), जिसपर बंधा तार घोड़े की पूंछ के बाल या ऊदल पेड़ की छाल या मरुल के पत्तों से प्राप्त रेशे से बना होता है।[9] सेरजा का बड़ो समुदाय के विवाह समारोह, ब्विसागु (बड़ो नववर्ष), और डोमाशी जैसे त्योहारों में किए जाने वाले पारंपरिक नृत्यों एवं गीतों के सहायक वाद्ययंत्र के रूप में व्यापक उपयोग किया जाता है।

ख) **सतसाङ**

सतसाङ अथवा सुत्साङ सिक्किम और आसपास के हिमालायी क्षेत्रों में रहने वाले लेपचा समुदाय का एक महत्त्वपूर्ण पारंपरिक तत् वाद्ययंत्र है। माना जाता है कि इस वाद्ययंत्र का नाम 'सातो' नामक एक शिकारी के नाम से पड़ा है। अपनी बनावट और वादन शैली के कारण इसकी तुलना भारतीय लोकवाद्य 'सारंगी' अथवा पश्चिमी वाद्ययंत्र 'वायलिन' से की जा सकती है, हालांकि इसे वायलिन की तरह ठुड्डी के सहारे कंधे पर उलटा रखकर नहीं बजाया जाता, बल्कि इसे वादक के गोद में सीधे खड़े रखकर बजाया जाता है। यह विशेषता इसे सारंगी के अधिक निकट लाती है।

सतसाङ सामान्यतः एक ही लकड़ी के टुकड़े को तराशकर बनाया जाता है। इसमें प्रायः तीन या चार तार होते हैं। इसकी कुल लंबाई लगभग 18-20 इंच होती है, हालांकि वादक की आवश्यकता के अनुसार इसका आकार छोटा या बड़ा भी हो सकता है।

सतसाङ को एक गज की सहायता से बजाया जाता है, जिसपर बंधा तार घोड़े की बाल से बना होता है। यह गज लगभग 20 इंच लंबा होता है और लेपचा भाषा में इसे 'सुताङ' कहा जाता है। वादक दाहिने हाथ से गज चलाता है, और बाएं हाथ की उंगलियों से तारों को दबाकर स्वर उत्पन्न करता है।

सांस्कृतिक दृष्टि से लेपचा समुदाय में सतसाङ का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसका उपयोग लेपचा समुदाय के अनेक पारंपरिक त्योहारों और सांस्कृतिक अनुस्थानों में किया जाता है। नामसूङ (लेपचा नववर्ष), तेंदोङ ल्हो रम फात (तेंदोङ पर्वत के प्रति वार्षिक कृतज्ञता अनुष्ठान) एवं अन्य लोक-सांस्कृतिक कार्यक्रमों में लेपचा लोकगीतों एवं नृत्यों को मधुर स्वर प्रदान करने के लिए इसका उपयोग किया जाता है।

**2. अवनद्ध वाद्ययंत्र**

संस्कृत भाषा के शब्द 'अवनद्ध' का अर्थ है मढ़ा हुआ, लपेटा हुआ या चारों तरफ कसा हुआ। अवनद्ध वाद्य वे वाद्ययंत्र होते हैं जो किसी खोखले ढांचे के एक या दोनों तरफ के मुख पर पशु की खाल मढ़कर बने होते हैं। इस प्रकार के वाद्ययंत्रों को बजाने के लिए किसी विशेष तकनीक की आवश्यकता नहीं होती, अपितु खाल पर हाथ से अथवा डंडी या छड़ी की सहायता से प्रहार करके ध्वनि उत्पन्न की जाती है। अवनद्ध वाद्य सामान्यतः मिट्टी, लकड़ी या धातु के बने होते हैं, जो संगीत में ताल या लय प्रदान करने के लिए प्रयोग किए जाते हैं। ढोल, तबला, नगाड़ा आदि अवनद्ध वाद्ययंत्रों के कुछ प्रचलित उदाहरण हैं। संसार की सभी देशों और सभी संस्कृतियों में इन वाद्ययंत्रों का उपयोग होता है, हालांकि आकार की भिन्नता के साथ वे हर समुदाय में भिन्न नामों से जाने जाते हैं। आलोच्य कहानियों में बड़ो और तिवा समुदाय में प्रचलित अवनद्ध वाद्ययंत्रों का उल्लेख मिलता है। उनका परिचय इस प्रकार है -

क) **खाम**

साधारणतः जिस अवनद्ध वाद्ययंत्र को हम 'ढोल' कहते हैं, बड़ो जनजाति के नृत्य-गीतों में प्रयुक्त उसी वाद्य को 'खाम' कहा जाता है। यह आकार में काफी बड़ा होता है। इसकी लंबाई लगभग तीन फीट और व्यास लगभग डेढ़ फीट होती है। खाम का निर्माण चितवन, कटहल, आम या ऊदल पेड़ की लकड़ी को तराशकर खोखला करके किया जाता है। लकड़ी के खोल के दोनों सिरों पर हिरण अथवा बकरी की खाल मढ़ी जाती है, फिर इन दोनों सिरों को खोल के ऊपर से भैंस की खाल से बनी पट्टियों से एक दूसरे के साथ कसकर बांधा जाता है। यह वाद्ययंत्र बड़ो समुदाय के खेराई पूजा और गरजा पूजा जैसे प्रमुख धार्मिक अवसरों पर पारंपरिक रूप बजाया जाता है।[10] खाम को दोनों तरफ से हाथों से बजाया जाता है।

ख) **ख्राम**

असम के नगाँव और मरिगाँव जैसे जिलों में निवास करने वाले तिवा या लालुंग समुदाय के लोगों के बीच भी परंपरागत रूप से कुछ वाद्ययंत्रों की संस्कृति प्रसारित होती रही है। उनके बिहु, भरत उत्सव, चग्रा मिचवा, चख लाङखुन फूजा आदि त्योहारों में नृत्य-गीतों के साथ वाद्ययंत्रों का वादन किया जाता है। इन वाद्ययंत्रों में दगारा या तम्बाङ, थोराङ, पाङचि आदि के साथ-साथ एक प्रमुख वाद्ययंत्र 'ख्राम' भी है।[11]

जिस प्रकार बड़ो समुदाय में ढोल को 'खाम' कहा जाता है, उसी प्रकार तिवा समुदाय में ढोल वाद्ययंत्र को 'ख्राम' के नाम से जाना जाता है। इसकी लंबाई बड़ो खाम के समान ही लगभग तीन फीट होती है, हालांकि इसका व्यास उसकी तुलना में कम है। ख्राम के दोनों छोरों का व्यास साधारण ढोल की तरह अलग-अलग न होकर समान रूप से लगभग आठ इंच होता है। ख्राम बनाने के लिए लकड़ी के खोल के दोनों सिरों पर गाय की खाल मढ़ी जाती है, और फिर खोल के ऊपर से उन्हें चमड़े की पट्टियों से आपस में कसकर बांधा जाता है।[12] ख्राम को बजाने के लिए भी किसी प्रकार की छड़ी का प्रयोग नहीं किया जाता, बल्कि इसे दोनों तरफ से हाथों से ही बजाया जाता है।

**3. घन वाद्ययंत्र**

विश्व की विभिन्न संस्कृतियों में परंपरागत रूप से प्रयुक्त वाद्ययंत्रों में घन वाद्ययंत्र (ताल वाद्य) सबसे प्राचीन वाद्ययंत्र हैं। इन्हें मानव शरीर के अंगों में से एक, हथेली के आकार में बनाया जाता है। घनवाद्य मूलतः किसी ठोस पदार्थ, जैसे लकड़ी, कांसा, पीतल आदि से बने वाद्यों को कहते है, जिन्हें आपस में टकराने, हिलाने या डंडों से प्रहार करने पर कंपन द्वारा ध्वनि उत्पन्न होती है। इन वाद्यों में न तो तार होते हैं और न ही खाल का प्रयोग किया जाता है। ये वाद्ययंत्र बजाने में आसान होते हैं, इसका कारण यह है कि इनका धुन से कोई संबंध नहीं होता है। इनका मुख्य कार्य संगीत में लय बनाए रखना होता है। घंटा, घुँघरू, करताल आदि घन वाद्ययंत्रों के कुछ उदहरण हैं।

आलोच्य कहानियों में बड़ो जनजाति की जोथा नामक घन वाद्ययंत्र का उल्लेख मिलता है।

क) **जोथा**

बड़ो जनजाति में प्रचलित 'जोथा' नामक वाद्य एक छोटे आकार का घन अथवा ताल वाद्ययंत्र है। यह आकार और रूप की दृष्टि से भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त 'मंजीरा' के समान होता है। 'जोथा' कांस्य धातु से निर्मित एक गोलाकार वाद्ययंत्र है। इसका मध्य भाग दबा हुआ होता है, जिससे एक कांस्य के कटोरे का आकार बनता है।

इसके बीच में एक छेद होता है, जिसमें पकड़ने के लिए एक डोरी डाली जाती है।

'जोथा' को जोड़े में बजाया जाता है, अर्थात दोनों हाथों में एक-एक ताल लेकर उन्हें आपस में रगड़कर या एक दूसरे पर आघात करके ध्वनि उत्पन्न की जाती है।[13] इस वाद्य का उपयोग बड़ो समुदाय के धार्मिक एवं सांस्कृतिक अवसरों, जैसे खेराइ पूजा, गरजा पूजा, ब्विसगु, डोमाशी आदि पर प्रदर्शित किए जाने वाले नृत्य-गीतों में ताल बनाए रखने के लिए किया जाता है। यह वाद्य बड़ो समाज की लोकसंगीत परंपरा में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

### 4. सुषिर वाद्ययंत्र

'सुषिर' शब्द का अर्थ है छिद्र या सुराख युक्त। सुषिर वाद्य वे वाद्ययंत्र होते हैं जिनमें वायु के प्रवाह से ध्वनि या स्वर उत्पन्न होते है। ये आमतौर पर एक खोखले नलिका या छिद्रयुक्त संरचना होते हैं, जिनमें छिद्रों से हवा भरकर या फूँककर स्वर उत्पन्न किया जाता है। इस प्रकार के वाद्ययंत्रों में वायु के दबाव को घटा-बढ़ कर, या छिद्रों को उंगलियों से नियंत्रित कर स्वर को ऊंचा-नीचा किया जाता है। प्रमुख उदाहरणों में बाँसुरी, शहनाई, पुंगी आदि शामिल हैं।

आलोच्य कहानियों में बड़ो, तिवा, और डिमाचा (उच्चारण दिमासा) जनजातियों में प्रचलित सुषिर वाद्यों का उल्लेख मिलता है, जिनपर आगे क्रमशः चर्चा की जा रही है।

#### क) चिफुं (उच्चारण सिफुं )

भारतीय संगीत परंपरा में बाँसुरी का प्राचीन काल से ही एक विशेष स्थान रहा है। यह लगभग प्रत्येक भारतीय समुदाय में विभिन्न नामों और आकारों में पायी जाती है। बड़ो जनजाति में बाँसुरी को ही 'चिफुं' कहा जाता है, हालांकि इसकी लंबाई साधारण बाँसुरी से अधिक है। 'चिफुं' बाँस से निर्मित होती है, जिसकी लंबाई लगभग 27 से 29 इंच होती है। बड़ो जनजाति वायु, जल, भूमि, आकाश और अग्नि - इन पाँच प्राकृतिक तत्वों को पाँच देवताओं के रूप में मानते हुए बाथौ पूजा की परंपरा का पालन करती है। इसी मान्यता के अनुरूप बाथौ पूजा में प्रयुक्त मंत्रों की संख्या भी पाँच है तथा उनके मूल वाद्ययंत्र भी पाँच माने जाते हैं, जिनमें खाम, जोथा, सेरजा, जाबस्रिं और चिफुं शामिल हैं। बाथौ मंत्र की धार्मिक मान्यता के अनुसार चिफुं बाँसुरी में भी छेदों की संख्या पाँच ही होती है।[14] इसकी धुन अन्य बाँसुरियों की तुलना में अधिक मधुर मानी जाती है। चिफुं का प्रयोग आमतौर पर खेराइ पूजा, ब्विसागु, डोमाशी, विवाह समारोह, बाथौ पूजा, जैसे विभिन्न अवसरों के साथ ही बड़ो लोक-संगीत में किया जाता है। ब्विसागु त्योहार के पहले दिन इसे विधिपूर्वक बजाते देखा जाता है।[15]

#### ख) पाङचि (उच्चारण पांसि)

तिवा समुदाय में बाँस से निर्मित बाँसुरी को 'पाङचि' कहा जाता है। यह आकार में साधारण बाँसुरी के समान ही छोटी होती है। बाँस के एक टुकड़े के एक सिरे को बंद करके उसके निकट एक छेद किया जाता है। बाँस के टुकड़े के मध्य भाग में पुनः छह छेद किए जाते हैं। वादन के समय सिरे के पास बने छेद से हवा फूंककर बाकी छेदों से हवा के प्रवाह को नियंत्रित करके मधुर ध्वनि उत्पन्न की जाती है। पाङचि का प्रयोग तिवा समुदाय के लोक-संगीत और सांस्कृतिक अवसरों में प्रमुखता से किया जाता है।

#### ग) मुरि

असम में निवास करने वाली डिमाचा जनजाति द्वारा पारंपरिक रूप से प्रयुक्त वाद्ययंत्रों की संख्या अपेक्षाकृत कम है, जिनमें मुरि, ख्राम, चुपिन आदि प्रमुख है। 'मुरि' साधारणतः लकड़ी से निर्मित एक वाद्ययंत्र है, जिसकी संरचना माथि, मुरिफङ, और मुरिबार नामक तीन भागों से संयोजित है। इसकी लंबाई प्रायः साढ़े तीन से चार फीट के बीच होती है। इसके साथ ही 'कुदाम' नामक अंश भी मुरि का एक प्रधान उपकरण है, जो चौड़ा और गोलाकार का होता है। इसे मुरि के 'माथि' भाग में बांधा जाता है। इस अंश के जुड़ने से मुरि वादक का मुख मुरि के साथ अच्छे से जोड़ा जा सकता है, जिससे वादन प्रक्रिया सरल हो जाती है। स्वर नियंत्रण के लिए मुरि में कुल छह छिद्र होते हैं। मुरि बजाने के लिए 'मिमु' नामक अन्य एक उपकरण की आवश्यकता होती है, जिसे सूखे पुआल के लगभग एक इंच लंबे टुकड़े से बनाया जाता है। 'मिमु' को मुरि के 'माथि' के छोटे सिरे पर रखकर फूँकने से ध्वनि उत्पन्न होती है।[16]

मुरि एक ऐसा वाद्य है जिसे दिन-रात अविराम बजाया जा सकता है। डिमाचा समुदाय के प्रमुख सांस्कृतिक उत्सव 'हाङछेउ मनाओबा', जो सात दिनों तक चलता है, के अवसर पर एक विशेष परंपरा देखने को मिलती है। इस दौरान डिमाचा युवतियाँ ख्राम (ढोल) और मुरि की 'मुरिथाइ' नामक विशेष धुन पर 'बाइग्राह' नामक नृत्य का सात दीन और सात रात तक निरंतर प्रदर्शन करतीं हैं। यह परंपरा विश्व की अन्य संस्कृतियों में अद्वितीय है।

### निष्कर्ष

समस्त विवेचन के निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र के विभिन्न जनजातीय समुदायों में वाद्ययंत्रों के चारों प्रकार, अर्थात तत्, घन, अवनद्ध और सुषिर वाद्ययंत्र प्रचुर मात्रा में प्रचलित हैं। इस क्षेत्र में निवास करने वाली बड़ो, तिवा, डिमाचा, लेपचा आदि जनजातियों द्वारा प्रयुक्त ये वाद्ययंत्र उनके धार्मिक उत्सव-अनुष्ठानों, पर्व-त्योहारों, तथा लोकजीवन से गहराई से जुड़े हुए हैं। परंतु आधुनिकता के प्रभाव के कारण उनके द्वारा परंपरागत रूप से बजाए जाने वाले अनेक वाद्ययंत्र आज काफी हद तक चुनौतीपूर्ण स्थिति में पहुँच गए हैं। जहाँ एक ओर बड़ो समुदाय के सेरजा, खाम और जोथा जैसे वाद्ययंत्रों को भौगोलिक संकेतक का दर्जा प्राप्त हो चुका है, वहीं दूसरी ओर डिमाचा समुदाय के मुरि जैसे वाद्ययंत्र अपने अस्तित्व-रक्षा की मांग करते हैं। इस सांस्कृतिक संकट

को पूर्वोत्तर के कथाकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है, तथा अपनी रचनाओं में वाद्ययंत्रों जैसी सांस्कृतिक धरोहर को स्थान देकर उन्होंने संस्कृति संरक्षण के प्रति अपने हिस्से का कर्तव्य का निर्वहन किया है।

**संदर्भ-सूची**


1. शर्मा, डॉ. नबीन चंद्र. भारतर उत्तर-पूर्वाञ्चलर लोक-संस्कृति. वाणी प्रकाश मंदिर, गुवाहाटी, 2016. पृ. सं. 241.
2. वही, पृ. सं. 243.
3. शर्मा, डॉ. नबीन चंद्र.भारतर उत्तरपूर्वाञ्चलर परिवेश्य कला. बनलता, गुवाहाटी, 2024. पृ. सं. 7.
4. शर्मा, डॉ. नबीन चंद्र. भारतर उत्तर-पूर्वाञ्चलर लोक-संस्कृति. वाणी प्रकाश मंदिर, गुवाहाटी, 2016.पृ. सं. 247.
5. संगीत, तबला एवं पखावज : हमारे अवनद्ध वाद्य . प्र. संस्करण. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली, 2025. पृ. सं. 73.
6. वही.
7. Deva, B. Chaitanya. *Musical Instruments of India*. 2nd Ed. Munshiram Manoharlal Publishers Pvt. Ltd., 1987, p. 145.
8. दुवरा, धर्मेश्वर. असमर बाद्ययंत्र. असम साहित्य सभा, गुवाहाटी, 1990. पृ. सं. 34.
9. Brahma, Jahnovi, et. al. "Traditional knowledge of musical instruments used by the Bodo tribes of Northeast India, BTC, Assam." *International Journal of Scientific and Research Publications*, Vol. 5, Issue 5, May 2015. https://www-ijsrporg/research&paper&0515/ijsrp &p4182-pdf
10. वही.
11. दुवरा, धर्मेश्वर. असमर बाद्ययंत्र. असम साहित्य सभा, गुवाहाटी, 1990. पृ. सं. 88.
12. वही.
13. डॉ. कल्पना तालुकदार. "जनजातीय लोकबाद्य." असमर बारेब-रणीया संस्कृति. संपा. डॉ. अंशुमान दास, आँक बाक, गुवाहाटी, 2020. पृ. सं. 65.
14. वही, पृ. सं. 65, 66.
15. Brahma, Jahnovi, et. al. "Traditional knowledge of musical instruments used by the Bodo tribes of Northeast India, BTC, Assam." *International Journal of Scientific and Research Publications*, Vol. 5, Issue 5, May 2015.https://www-ijsrp org/research&paper&0515/ijsrp &p4182-pdf
16. दुवरा, धर्मेश्वर. असमर बाद्ययंत्र. असम साहित्य सभा, गुवाहाटी, 1990, पृ. सं. 89,


**आधार ग्रंथ**


1. गुप्ता, रमणिका, संपा. पूर्वोत्तर की जनजातीय कहानियाँ. चौथा संस्करण. नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली, 2013.
2. वर्मा, नवारुण, अनु. कथा भारती : असमिया कहानियाँ. पहला संस्करण, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नयी दिल्ली, 1995.
3. वैश्य, डॉ. रीतामणि, संपा. असम की जनजातियाँ : लोकपक्ष एवं कहानियाँ. प्रथम संस्करण, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2023.